International Journal of Applied and Universal Research **E- ISSN No: 2395-0269**
Volume VI, Issue II, April 2019 Available online at: www.ijaur.com

"श्रीमद्भागवत की विभिन्न पञ्चाध्यायियों का अध्यात्मिक अनुशीलन"

1. धुव कुमार पाण्डेय, शोधार्थी शा0 वेंकट संस्कृत महा0 रीवा म0प्र0
2. डा0 अंजनी प्रसाद (शोध निर्देशक)
3. माण्डवीशरण त्रिपाठी (सहशोध निर्देशक)

सारांश– कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङगोऽस्त्वकर्मणि।।

श्रीमदभागवत् गीता को हिंदू धर्म में पवित्र एवं महान दर्जा प्राप्त है। यह ग्रंथ अक्सर प्रत्येक हिंदू के घर में मिलता है। गीता ग्रंथ की यह विशेषता भी है। कि यह केवल हिंदू धर्म के लिए नही बल्कि सार्वभौमिक, सार्वदेशिक, सार्वकालिक एवं समस्त मानवजाति के लिए है गीता एकमात्र ऐसा ग्रंथ है जाति के लिए है जो समस्त मानवजाति को जनकल्याण एवं स्वकल्याण की प्रेरणा देता है यही कारण है कि गीता विस्त्र की अधिकांश भाषाओं में अनुवादित है और देश व विदेश में गीता पर अनेक शोध हूए है गीता के संदेश को दिए लगभग पांच हजार वर्ष हो चुके है लेकिन तब से आज तक यह संदेश आम जनमानस की प्रेरणा का स्त्रोत रहा है। श्रीमद्भागवत महापुराण 335 अध्यायों का महापुराण है। पुराणों के सभी लक्षण इस ग्रन्थ में विद्यमान है अतः यह दशलक्षण युक्त महापुराण है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, कि इसमें 12 स्कन्ध है। यद्यपि विद्धदैरैण्य श्री वोपदेय ने हरि–लीला में इस ग्रन्थ की अध्याय संख्या 331 दी है, किन्तु श्रीधर स्वामी की टीका के अनुसार वर्तमान प्रत्तियों में अध्याय संख्या 335 हैं श्री वोपदेव जी ने चार अध्यायों को पृथक न मानकर साथ के अध्यायों में सम्मिलित कर लिया है। हरिलीला की टीका में यह बात स्पष्ट कर दी गई है।

मुख्य शब्दः– "श्रीमद्भागवत, पञ्चाध्यायिय एवं अध्यात्मिक अनुशीलन।

प्रस्तावना :–

महर्षि वेदव्यास ने महाभारत, ब्रह्मासूत्रो एवं सत्रह पुराणों के बाद अध्यात्मदीप, पुराणातिलक श्रीमद्भागवत् की रचना की हैं वेद वेदान्तों का सार श्रीमद्भागवत् है। श्रीमदभागवत एवं भगवान श्रीकृष्ण अभिन्न है। श्रीमद्भागवत् दूध के मधमे से प्रकटित नवनीत हैं।

अतः वेदार्थ सूत्रार्थ गीतार्थ आादि सब की परिपूर्ति श्रीमद्भागवत में है। कुछ विद्वान कहते है। कि भागवन्तु अपौरूधेय है वह वेदव्यास रचित नही परंतु वेद्व्यास के हृदय में भगवत कृपा से स्फूरित है।

अपौरूधेय वाक्य मात्र की प्रमाणादि दोष लेशों से शून्य है अतएव सर्य प्रमाण शिरोमणि (भागवत 1.3.44) को श्री सूत पुराणार्क कहकर अज्ञानान्धकार नाशन में इसकी उपयोगिता का ज्ञान करते है।

लीलास्तव–में श्रीपाद सनातन ने इसे श्रीकृष्ण स्वरूप कहा है। प्राचीन शास्त्रकारों में भी इसे श्रीकृष्ण–तुल्य घोषित किया है।

श्रीमद्भागवत् में द्वादश स्कन्ध है। ये द्वादश स्कन्ध श्रीकृष्ण के द्वादश अंग कहे गये है। कौशिकी संहिता (25–8) में कहा गया है–

पादादिजानुपर्यन्तं प्रथमं स्कन्ध ईरितः।

तदूध्वै कटिपर्यन्तं द्वितीयस्कन्ध उच्यते।।

तृतीयों नाभिरित्युक्तश्चतुर्थमुदरं स्मृतम।

पंचमं हृदयं प्रोक्तं पष्ठः कण्ठं सवाहुकम।।

सर्वलक्षणसंयुक्तं सप्तमों मुखमुच्यते।

अष्टमश्चक्षुषी विष्णोः कपोलो भृकुटिः परः।।

दशमो ब्रह्मरंध्रश्च मन एकादशः स्मृतः।

आत्मा तु द्वादशस्कन्धः श्रीकृष्णस्य प्रकीर्तितः।।[1]

अर्थ सुस्पष्ट है। श्रीमद्भागवत् के प्रत्येक स्कन्धों में श्रीकृष्ण–तत्व विराजमान है।[2] प्रथम–स्कन्ध अधिकार सूचित करने वाला है।

<u>प्रथम–स्कन्ध</u>

सत्यं परं धीमहि (भा0 प्र0 एक0)

सत्यं परं धीमहि (भा0 एकदश स्कन्ध)

प्रथम स्कन्ध के प्रथम " लोक में ही परम सत्य के चिन्तन का निर्देश है। परम सत्य वह है जो जगत का उत्पादन कारण और निमित्त कारण–दोनों ही है। उसी से नाम रूपात्मक प्रपंच के आकार विकार और प्रकार प्रकट हुए है। उसी में है और उसी में समा जायेंगे। प्रपंच की अभिव्यक्ति होने पर भी उसमें अनुगत है। और अनुगत होते हुए भी उनसे व्यक्ति रिक्त है। वह न केवल स्थूल द्रव्यों में प्रत्युत संपूर्ण जीव–बुद्वियों में एवं एक जीव हिरण्यगर्भ की बुद्वि में भी अनुगत है ओर उन्हें सत्ता स्फूर्ति देता रहता है।

वस्तुतः त्रिविध–सृष्टि बिना हुए ही भास रही है। और उसकी सत्ता से ही पृथक–पृथक पदार्थ सत्य प्रतीत हो रहे है। वह स्वयंप्रकाश, सर्वावभासक एवं अविद्या माया के स्पर्श से भी रहित है। ऐसे अद्वितीय ज्ञानस्वरूप परम सत्य के चिन्तन के लिए ही श्रीकृष्ण–रूप श्रीमद्भागवत का प्रारम्भ हुआ है।

इस उपक्रम के अनन्तर श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध (उपसंहार) पर एक दृष्टि डाल ली जाय। ठीक वही शब्द है। वह परम सत्य स्वरूप से शुद्व आगन्तुक मलों, आवरणों से रहित शोक ओर मृत्यु से वर्जित है। उसको जान लेने पर जन्म मृत्यु नही, शोक–मोह नही, आवरणादि–दोष नही।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थ का प्रारम्भ और अन्त दोनों परम सत्य के चिन्तन के लिए ही है।

द्वितीय–स्कन्ध

इस स्कन्ध के चतुः" लोकी भागवत में नारायण अपने आदि कालीन स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सृष्टि के पूर्व केवल मै ही मै था। मेरे अतिरिक्त सत्–असत् या इनसे अतिरिक्त कोई भी दूसरी वस्तु नही थी, इनके न रहने पर भी मै ही रहता हू। जो प्रतीत हो रहा है वह सब मै हूॅ। सबका निषेध कर देने पर भी जो अवशिष्ट रहता है वह भी मै ही हूॅ माया से ही असत्–प्रपंच सत्–सा और सद् ब्रह्य असत् सा भासता है। जैसे मनुष्य, पशु–पक्षी, वृक्ष–लता, पाषाणादि नाना नाम–रूपों में महाभूत पहले से ही विद्यमान है, वैसे ही मैं सबमें विद्यमान और विवर्तमान हूॅ। मैं सबसे व्यातृत होने पर भी सब से अनुवृत्त हूॅ। मैं अविनाशी एवं पूर्ण हूॅ। तत्व–जिज्ञासु के लिए केवल यही आत्म–ज्ञान पर्याप्त है।

नारायण की इस युक्ति–युक्त उक्ति से यह सिद्व है कि परमात्मा भूत, भविष्य, वर्तमान–रूप काल भेद से वाह्य–अन्तर एवं अन्तराल रूप देश–भेद से तथा सजातीय विजातीय स्वगत रूप वस्तु–भेद से सर्वथा रहित है। परमात्मा अद्वितीय ज्ञान–स्वरूप है इसका यही अभिप्राय है। ज्ञाता और ज्ञेय का पृथक स्वरूप मिथ्या है। ये केवल परमात्मा से रूप में ही सत्य है। इसकी व्याख्या करने के लिए श्रीमद्भागवत् में सैकडों प्रसंग है।

द्वितीय–स्कन्ध के प्रारम्भ में ध्यान–विधि और भगवान के विराट् स्वरूप का वर्णन है, जो सर्वथा रूचिकर श्रोत्राभिराम होते हुए भी आध्यात्मिक है। यह साधन–स्कन्ध है। इसमें साधना का निरूपण है।

परीक्षित महाराज श्री शुकदेव जी से पूछते है–

यथा सन्धार्यते ब्रहान् धारणा यत्र सम्मता।

यादृशीलवा हरेदाशु पुरूषस्य विशेषतः।।

अर्था धारणा किस साधन से किस वस्तु मे की जाती है। और उसका क्या स्वरूप माना जाता है। जो शीघ्र ही मन का मैल मिटा देती हे। उक्त प्रश्न का समाधान शुकदेव जी के शब्दों में देखने योग्य है।

आसन, श्वास, आसक्ति और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके फिर बुद्वि के द्वारा मन को भगवान के स्थूल रूप में लगाना चाहिए। जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्व और प्रकृति इन सात आवरणों से घिरे हुए इस ब्रह्याण शरीर में जो विराट्–पुरूष है, वे ही धारणा के आश्रय है उन्ही की धारणा की जाती है। यह कार्य–रूप सम्पूर्णवि" व जो कुछ कभी था, है, या होगा–सबका सब जिसमें दीख पडता है। वही भगवान् का स्थूल रूप से स्थूल और विराट् शरीर है।

तृतीय–स्कन्ध

उद्वव द्वारा भगवान् का बाल चरित्र का वर्णन।

चतुर्थ–स्कन्ध

राजर्षि ध्रुव एवं पृथु आदि का चरित्र।

पंचम–स्कन्ध

समुद्र, पर्वत, नदी, पाताल, नरक, आदि की स्थिति।

षष्ठ–स्कन्ध

देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के जन्म की कथा।

सप्तम–स्कन्ध

हिरण्यकश्यिपु, हिरण्याक्ष के साथ प्रहलाद का चरित्र।

अष्टम–स्कन्ध

इस स्कन्ध में मन्वन्तरों का वर्णन है। पंचम स्कन्ध में स्थान आदि का वर्णन करते आये तो यह बतलाना भी आवश्यक हो गया कि किसी एक समय में ही यह सब नही होता, सब कालों में सब मन्वन्तरों में स्थिति प्रायः एक सी रहती हैं।

नवम–स्कन्ध

इस स्कन्ध को ईशानुकथा नाम से अभिहित किया जाता है। सब स्थान और काल में जो परम आश्रयणीय है, उन परम पुरूष के मानव रूप में अवतारों–श्रीराम, परशुराम और श्रीकृष्ण का वर्णन करने के लिए इनके वंशो का वर्णन है।

दशम–स्कन्ध

श्रीमद्भागवत महापुराण का सबसे बडा स्कन्ध दशम–स्कन्ध है। विद्वान लोग इसे निरोध स्कन्ध कहते है। भगवान् अवतार लेकर अपनी लीला से बैसे सब प्रकार जीवो की वृत्ति अपने में निरूद्ध करते है, यह विस्तार पूर्वक दिखलाया गया है।

एकादश–स्कन्ध

यह ज्ञान काण्ड है, चूॅकि ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त करना संम्भव है– "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति।" अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नही मिलती। मुक्ति न मिलने से जीव विभिन्न योनियों में भटकता रहता है। अतः जब अवतार काल न हों तो मनुष्य किन साधनों का आश्रयण करके वृत्ति भगवान् में निरूद्ध करें और आवागमन से घूॅटे, इस मोक्ष–साधन का निरूपण एकादश स्कन्ध के मुक्ति–स्कन्ध में है।

द्वादश–स्कन्ध

श्रीमद्भागवत का अन्तिम स्कन्ध द्वादश–स्कन्ध है। यह आश्रय स्कन्ध है। समस्त ब्रह्याण्ड के एक मात्र आश्रय परमब्रह्य

परमात्मा है। उनके आश्रयण के अंग रूप से इस स्कन्ध में पंचविध आश्रयों का वर्णन है।

अध्याय

श्रीमद्भागवत महापुराण 335 अध्यायों का महापुराण है। पुराणों के सभी लक्षण इस ग्रन्थ में विद्यमान है अतः यह दशलक्षण युक्त महापुराण है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, कि इसमें 12 स्कन्ध है। यद्यपि विद्धदैरेण्य श्री वोपदेय ने हरि–लीला में इस ग्रन्थ की अध्याय संख्या 331 दी है, किन्तु श्रीधर स्वामी की टीका के अनुसार वर्तमान प्रत्तियों में अध्याय संख्या 335 हैं श्री वोपदेव जी ने चार अध्यायों को पृथक न मानकर साथ के अध्यायों में सम्मिलित कर लिया है। हरिलीला की टीका में यह बात स्पष्ट कर दी गई है।

महाप्रभु बल्लभाचार्य भी दशस्कन्ध में बत्स–हरणलीला का प्रक्षिप्त मानते है, किन्तु उन्होने उसकी टीका की हैं। श्री विजयध्वज जी की टीका में पारिजातहरण–प्रसंग में अधिक अध्याय है। ऐसे ही अन्य दाक्षिणात्य टीकाओं में भी अनेक अध्याय अधिक पाये जाते है।

अध्याय (प्रथम स्कन्ध) इसे अधिकारी स्कन्ध कहा जाता हैं। इसमें कुल "उन्नीस" 19 अध्याय है। इस स्कन्ध में मुख्य रूप से तीन श्रोता अधिकारी तथा तीन वक्ता अधिकारी वर्णित है।

1, शौनक ऋषि तृतीय कोटि के वक्ता है। सूत और लोमहर्षण जी भी तृतीय (सामान्य) कोटि के ही वक्ता है। क्योंकि शौनकादि ऋषि स्वर्ग का भी है। वे स्वर्ग है। सपने की तरह मन का विलास है। इसलिए माया–मात्र है मिथ्या है। परम–सत्य, सुन्दर और शिव केवल श्रीकृष्ण है–

यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्म्या श्रवणादिभिः।

न" वरं गृहा माणं च विद्वि माया मनोमयम ।।

श्रीमद्भागवत में " लोको की संख्या अठारह हजार मानते है। स्वयं श्रीमद्भागवत महापुराण ही अपने को अठारह हजार लोक वाला महापुराण प्रतिपादित किया है। यह महापुराण मन्त्रात्मक ग्रन्थ है। इसके एक–एक श्लोक, एक–एक पद, और शब्दो का मंत्र की भांति प्रयोग करके लोग अपनी अभीष्ट सिद्वि करते है। इसलिए परम्परा से ही पाठग्रन्थ होने के कारण श्रीमद्भागवत में कुछ वृद्वि एवं हास नही हुआ है। वह ज्यों का त्यौ चला आता है।

स्थूल –दृष्टि से अवलोकन करने पर वर्तमान श्रीमद्भागवत में अठारह हजार " लोक नहीं मिलते, इसके विभिन्न कारण हो सकते है। " लोको की गणना करने से इस महापुराण में सोलह हजार " लोकों की गणना करने हेतु प्रत्येक "उवाच" को " लोक मानकर गणना की जाय तब " लोक संख्या 18 हजार हो जाती है। सम्भवतः इसी से श्रीमद्भागवत महापुराण के पाट में इति और अथ को भी छोडा नही जाता । क्योंकि श्रीमद्भागवत रस–रूप फल हैं। इस में त्याग करने योग्य छिलका आदि कुछ नही है। प्रसङ्गानुसार प्रत्येक स्कन्ध के एक–एक " लोक दिये जा रहे है–

जन्मद्यस्य यताडन्वयादितरत–

श्चार्थेावभिज्ञः स्वराट।

तेने ब्रह्म ह्रदा य आदि कवये

वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च।

कथितो वंश विस्तारो भवता सेाम सूर्ययोः।

राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम।।

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरायों यदुभिर्वृतः।

भुवोऽवतारयद् भारं जविष्ठं जनयन् कलिम।।

स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंश विभूषणे।

कस्य वंशोऽभवत पृथ्व्या मेंतदाचक्ष्च मे मुने।।

श्रीमदभागवत के प्रत्येक " लोक मंत्र है और निरंतर झरने की भांति रस निःसृत होता रहता है। यह साक्षात् भगवान् का स्वरुप है। इसी से भक्त–भगवान् भगवद्भावना से श्रद्वापूर्वक इसकी पूजा आराधना से ही शान्ति मिली जिसमें सकाम कर्म, निष्कास–कर्म, साघन ज्ञान, सिद्वज्ञान, साधनभक्ति, साध्यभक्ति, वैधीभक्ति, प्रेमाभक्ति, मर्यादा–मार्ग, अनुग्रह–मार्ग, द्वैत–अद्वैत आदि सभी का परम रहस्य बडी ही मधुरता के साथ भरा हुआ है। जो सारे मत भेदों से उठा हुआ अथवा सभी मतभेदों का समन्वय करने वाला महान् ग्रन्थ है। ऐसे श्रीमद्भागवत का परिचय क्या दिया जाय? इस पुराण के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह अशान्त मन को शान्त करने वाला, भवाब्धि के प्रपंचों को मूलतः विनाश करने वाला भक्तिशास्त्र है। इस पुराण में अशान्त ह्रदय की शान्ति के लिए भगवान के सुन्दर चरित्रों के श्रवण के अलावा और कोई उपाय नहीं है। अतः सर्वसाधारण पुरूष के कल्याण के लिए भगवान की लीलाओं का चिन्तन, श्रवण, कीर्तन।

श्रीमद्भागवत की पञ्चाध्यायी का परिचय

(क) रास पञ्चाध्यायी :–

श्रीमद्भागवत संस्कृत वाङ्मय की सर्वोत्कृष्ट परिणति है। उसके लक्ष्य साधन और शैली महान् तथा विलक्षण है एवं उसका स्वरूप भी अत्यन्त गंभीर मधुर तथा प्रसादपूर्ण है। उसका अध्याय उसका काव्य और उसकी समाज संघटन प्रणाली संम्पूर्ण संसार के लिए गौरव की वस्तु है। जीवों के परम कल्याण के लिये ही इस ग्रन्थ–रत्न का आविर्भाव हुआ है। यह भगवान् का साक्षात् स्वरूप है। उद्धव की प्रार्थना से भगवान ने भागवत में प्रवेश किया है। इसमें उन्होंने प्रवेश किया है तथा अपना विशेष तेज स्थापित किया है। वाङ्मयी मूर्तिधारण करके ही वे भागवत के रूप में प्रकट हुए हैं। वारह स्कन्ध का यह ग्रन्थ–भगवद् पिग्रह के बारह अङ्.ग हैं और ये बारहों स्कन्ध एक दूसरे से कम नहीं अपितु सभी स्कन्ध

रस–प्रवाह–पूर्ण हैं। इस पुराण का तो दशम–स्कन्ध भगवान् की आत्मा–स्वरूप है उसमें भी पॉच–अध्याय जिन्हें रास पचाध्यायी कहा जाता हैं। इस पुराण के प्राण रूप कहे गये हैं। इस दशम स्कन्ध के दो भाग हैं। उनचास 49 अध्यायों का पूर्वार्ध और एकतालिस अध्यायों का उत्तरार्ध, इस प्रकार कुल नब्बे 90 अध्याय पूर्णांक 9 नौ के द्वारा पूर्णता के सूचक हैं।

जड़, चेतन, सुर, असुर, मानव, पशु पक्षी, स्त्री–पुरूष, बालक वृद्ध, अज्ञानी द्ध, अज्ञानी इन सब के मन का अपने में श्रीकृष्ण निरोध करष्ण निरोध करते हैं। यही कारण है कि इ कारण है कि इस स्कन्ध (दशमस्कन्ध) को निरोध–कन्ध ककन्ध कहते है। इसमें कोइइसमें कोई विभाजन नहीं हैं। एक ओर वेणु वादन से र्नि विभाजन नहीं हैं। एक ओर वेणु वादन से निरोध है तरोध है तो इो दॅसरी ओर वेद–स्तुति में ज्ञानियों का। युद्धद्ध तथा संहार में असुरों का भी निरोध है।

वस्तुतः मानव–मन जितना चंचल है उतना ही भावुक भी। वह क्षण–मात्र भी किसी विषय पर स्थिर नहीं रह पता। किन्तु जब वह भावुकता के साथ एक बार किसी विषय की ओर आकृष्ट हो जाता है तब विवशता की अवस्था में भी उस वस्तु को भी छोडकर दूसरी ओर सर्वथा मुड़ना उसके लिए असम्भवसा हो जाता है। मन के इस झुकाव को लगन या प्रवृत्ति कहा जत्ति कहा जा सकता है। ऐसी प्रवृत्ति जब सांसारिक विषयों तक सीमित रहती है तब इसको रागात्मक या भौमिक प्रवृत्ति कहा जा सकता है। ऐसी प्रवृत्ति जत्ति जब सांसारिक विषयों तक सीमित रहती है तब इसको रागात्मक या भौतिक प्रवृत्ति कहा जत्ति कहा जाता है। जब इस प्रवृत्ति का संबंध वैराग्य के साथ हत्ति का संबंध वैराग्य के साथ हो जाता है तब उस भाव को दार्शनिक प्रवृत्ति के नाम से पुकारा जत्ति के नाम से पुकारा जाता हैं।

विविध भावुक भावनामय इस दार्शनिक प्रवृत्ति के अनेक रूप हैं जत्ति के अनेक रूप हैं जो ज्ञान–योग, सॉख्य–योग, भक्ति–योग इत्यादि शब्दों से कहे शब्दों से कहे जाते हैं।

इसी प्रकार 'रास' शब्द भी एक विशिष्ट दार्शनिक पक्ष को प्रस्तुत करना है। दशम स्कन्ध पूर्वार्ध अध्याय 29 से 33 तक भगवान् की रासलीला का प्रसंग है। इसी को विद्वान् लोग रास– पचाध्यायी कहते हैं।

इस 'रास पचाध्यायी' में श्रीमद्भागवत वर्णित–तत्वों के सारभूत परम तत्वों का परमोज्ज्वल प्रकाश है। ये पांच अध्याय वस्तुतः श्रीमद्भागवत के पंचप्राण स्वरूप हैं।

रास– पचाध्यायी का विवेचन करने से पहले 'रास' पर विचार करना है।

'रास' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जाती है, एक रास शब्द 'रासृ' धातु में 'घञ्' प्रत्यय मिलाने से निष्पन्न होना है, जिसका अर्थ है–शब्द।

शब्द के तात्विक स्वरूप को व्याकरण के अनुसार स्फोट कहा जाता है। स्फोट में कम्पन का स्वरूप अभेद रूप से समाहित रहता है और उसमें ब्रह्म का भाव भी स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। सृष्टि के मूल में ब्रह्म का अण्डभेदन होता है। जिसमें कम्पन या स्पन्दन का भाव निर्विवाद है। दसलिए यह सृष्टि उत्पादन तथा निर्मित कारण के रूप में पूर्णतया ब्रह्ममय एवं कम्पनमय है। संसार के सभी पदार्थो तथा कार्यों में स्थूल या सूक्ष्म प्रत्यक्षया परोक्ष रूप में कम्पन का अस्तित्व–अन्वय विद्यमान है। गर्भाशय में प्रवेश समय से लेकर मृत्युपर्यन्त जीव में स्पन्दन एवं कम्पन का भाव तो स्पष्अ ही है।

रसेन कृतः रासः इस प्रकार 'रास' शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति की जाती है जिसका अर्थ होता है 'रस के द्वारा किया गया कार्य'।

रास शब्द का मूल रस है। और रस स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। 'रसो ये सः ' (तैतरीयोपनिषद 2–6–1) इस श्रुति के अनुसार 'रस' शब्द का अर्थ होता है ब्रह्म अर्थात रास का अर्थ होता है ब्रह्म (श्रीकृष्णका) कार्य।

इस प्रकार यह सृष्टि ब्रह्म के द्वारा सम्पादित कार्य है और उसमें आह्लादकारी है रास।

जिस दिव्य–क्रीडा में एक ही रस अनेक रसों के रूपों में होकर अनन्त रस का समास्वाछन करें, एक रस ही रस समूह के रूप में प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद लीलाधाम और विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपन के रूप में कीडा करें, उसका नाम रास हैं।

रास शब्द का अर्थ सुफोट (वैयाकरणों की दृष्टि) माना जाय या ब्रह्म का कार्य–दोनों के मूल में कोई तात्विक अन्तर नहीं है अपितु दोनों का एक ही आशय हैं एक वह है स्थॅल–सृष्ि में सूक्ष्म ततव का दर्शन करना। ब्रह्म (श्रीकृष्णष्ण) के के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों स्वरूपों को सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण ऊति मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इनदश अवस्थाओं में प्रस्तुत किया गया हैं।

''ताः राश्रीः'' राश्री का अर्थ आनन्द–दायिनी भी होता है। ''क्षरयोत्फुल्लमाल्लिकाः'' शरद् ऋतु होने के कारण मल्लिका के फूल खिले हुए हैं, उनको देखकर भगवान् ने भी यह सेंल्प किया कि मै। विहार करू।

वीक्ष्य रन्तु मनश्चक्रे = इसका अर्थ है कि भगवान् सृष्टि का वीक्षण करते हैं वैसे ही उन्होंने वृन्दावन का वीक्षण करके उसमें अपने सच्चिदानन्द धनस्वरूप का रस का आधानकरके मनका सन्निवेश किया। 'रन्तुंमनश्चके' में भगवान को अपना प्रतिपाइित किया गया है। अप्राणो ह्यमनाःशुभः' फिर भगवान ने मन का निर्माण कैसे किया?

योगमायामुपाश्रितः= अर्थात् योग माया का आश्रय लेकर भगवान ने मन का निर्माण किया, कयोंकि योगमाया की सहायता बिना यह काम नहीं हो सकतां योगमाया क्या है? भगवान की अचिन्त्यशक्ति का नाम योगमाया है। भगवान से बिछुडे हुए संसारी भगवान से बिछुडे हुए संसारी जीवों को भगवान के साथ योग करने मिलाने के लिए भगवान के ह्रदय में ंजदय में ंजो कृपा है, वह योग माया हपा है, वह योग

माया है–''माया बन्धे कृपायांच, योगाय मायाम्।'' रास पंचाध्यायी पर श्री रामनारायण ज।'' रास पंचाध्यायी पर श्री रामनारायण जी की भाव–विभाविका नाम की एक टीका है किी भाव–विभाविका नाम की एक टीका है किी भाव–विभाविका नाम की एक टीका है जिसमें ''योगमायामुपाश्रितः'' के एक–एक शब्द और उनकी व्युत्पत्ति को लेकर तिरसठ–चौंसठ प्रकार के अर्थो का निरूपण किया गया है। यहॉ कतिपय उदाहरण, यथा–

1. **योगमायामुपाश्रितयोगमायामुपाश्रितः–**
   योगमायाशब्दीयस्यातायोगमायाम्।

   वंशीमुपाश्रितः= भगवान ने वंशी का आश्रय लिया।

2. **योगमायाम्**= राधाम्, उपाश्रित सर्वाश्रयोऽपि भगवान्। अर्थात् वैसे तो भगवान् सबके आश्रय हैं परन्तु ज सबके आश्रय हैं परन्तु जब उनको रास करना हुआ तब ये रासेश्वरी श्रीराधा रानी रूपयोगमाया के पास गये। ब्रह्म रस–स्वरूप ता रस–स्वरूप तो है परन्तु वह बिना योग माया के रास नहीं कर सकता। क्योंकि रस को अनेक बनाकर ही रस हो सकता है।

निष्कर्षः–

श्रीमद्भागवत संस्कृत वाड्मय की सर्वोत्कृष्ट परिणति है। उसके लक्ष्य साधन और शैली महान् तथा विलक्षण है एवं उसका स्वरूप भी अत्यन्त गंभीर मधुर तथा प्रसादपूर्ण है। उसका अध्याय उसका काव्य और उसकी समाज संघटन प्रणाली संम्पूर्ण संसार के लिए गौरव की वस्तु है। जीवों के परम कल्याण के लिये ही इस ग्रन्थ–रत्न का आविर्भाव हुआ है। यह भगवान् का साक्षात् स्वरूप है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. Janardan Ghimire, Meaning of Education in the Bhagavad Gita, Journal of Education and Research, March 2013, Vol. 3
2. Acharya, S. R., & Sharma, B. D. (Eds.). (2010). 108 Upanishad, gyan kanda. Mathura, Gayatri Tapobhumi: Uga Nirman Yojana Bistar Trust.
3. Adhikari, A. (2044 BS). Shreemadbhagavad Geeta, Geeta lokbhasya.
4. Loklaxmi Adhikari. Barone, T., & Eisner, E. W. (2012). Arts based educational research. Los Angeles: SAGE.
5. Bhawuk, D. P. S. (2011). Spirituality and Indian psychology: Lessons from the Bhagavad-Gita. New Delhi: Springer.
6. Fosse, L. M. (2007). The Bhagavad Gita: The original Sanskrit and translation
7. Frazier, J. (2008). Hermeneutics in Hindu studies. The Journal of Hindu Studies, 1, 3-10.
8. Swami, B. (1971). Bhagawad Geeta as it is. Chicago: University of Chicago.